कक्कु के कारनामे

पी.के. बसन्त

(7)

कक्कु और दादी की खीर

कक्कु की बूढ़ी दादी कक्कु लोगों के साथ ही रहती थीं। दादाजी काफी पहले ही गुज़र चुके थे। दादी ज़्यादातर समय पूजा-पाठ में बिताती थीं। बचा हुआ समय वे अपनी बीमारियों की चर्चा और बहुओं की निन्दा में बिताती थीं।

दादी वैसे तो लगभग सभी देवी-देवताओं की पूजा करती थीं लेकिन विशेष रूप से वे लड्डू-गोपाल की पूजा करती थीं। उनके लिए एक विशेष पूजा घर ऊपरी मंज़िल पर बना हुआ था। ऊपर और कोई नहीं रहता था। लड्डू-गोपाल की पूजा के लिए दादी विशेष रूप से खीर बनवाती थीं। दूध को गाढ़ा करके उसमें खूब सारा काजू-किशमिश डाला जाता था। जब दादी प्रसाद बाँटतीं तो किसी के भी हिस्से में एक या दो चम्मच से ज़्यादा खीर नहीं आती थी। अक्सर कक्कु का मन होता कि थोड़ी-सी खीर और मिल जाए। पर कभी भी मन भरकर प्रसाद खाने का मौका नहीं मिला।

एक दिन दादी ने लड्डू-गोपाल की खूब पूजा की। पूजा के बाद वे प्रसाद भगवान के सामने ही रख देती थीं। वहाँ पर एक कटोरे में खीर, हाथ धोने के लिए एक में पानी और पास में एक तौलिया भी रखा होता था।

समझ यह थी कि लड्डू-गोपाल थोड़ी-सी खीर खाएँगे, फिर पानी से हाथ-मुँह धोएँगे। इसके बाद तो हाथ पोंछने के लिए तौलिए की ज़रूरत होती ही।

एक दिन दादी ने देखा कि कटोरे की खीर कम हो गई है। पानी वाले कटोरे में भी खीर के अंश थे और अन्त में तौलिए का भी इस्तेमाल हुआ था। दादी को लगा कि उनकी बरसों की पूजा का फल मिलने लगा है। लड्डू-गोपाल ने खुद आकर खीर खाई है। दादी की खुशी का ठिकाना न था। यह बात उन्होंने किसी को न बताई। बताने पर कहीं लड्डू-गोपाल रूठ जाएँ तो? उन्होंने अगले दिन और ज़्यादा खीर बनाई। फिर से खीर खाई गई थी। खीर की मात्रा बढ़ती गई और ऐसा लगता कि लड्डू-गोपाल हर दिन थोड़ी ज़्यादा खीर खाते थे। दादी तो आनन्द विभोर थीं। बीमारी की बात या बहुओं की शिकायत अब बन्द हो गई थी। पूजा खत्म होने के बाद जहाँ भी हों, वहीं भगवान का जप करती रहतीं।

कुछ दिन ऐसा ही चलता रहा। लेकिन धीरे-धीरे दादी का मन लड्डू-गोपाल के दर्शन के लिए आतुर होने लगा। अगर भगवान के दर्शन हो जाएँ तो सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाएँ। लड्डू-गोपाल तो भक्तों के साथ लुका-छिपी करते ही हैं। एक दिन दादी प्रसाद रखकर एक कोने में छुप गईं। आज वे लड्डू-गोपाल का दर्शन करके ही रहेंगी। पूजा के बाद थोड़ा समय ही बीता था कि दादी को एक आहट सुनाई पड़ी। दादी साँस रोके इन्तज़ार कर रही थीं। लेकिन यह क्या, वहाँ लड्डू-गोपाल नहीं बल्कि कक्कु हाज़िर था। वह भला पूजा घर में क्या कर रहा था? कक्कु बिना आहट के आया और बड़े मज़े से खीर खाने लगा। दादी के मुख से दुख और गुस्से से मिली एक चीख निकली। उसके बाद तो कक्कु जी पकड़े गए। उस दिन ही फैसला हुआ कि कक्कु को जल्दी-से-जल्दी हॉस्टल भेज दिया जाए।

(8)

कक्कु गया हॉस्टल

कक्कु को जब एक शहरी स्कूल के हॉस्टल में भेजा गया तो उसे बेहद अकेलापन महसूस होता था। लेकिन कुछ ही दिनों में उसने दोस्तों का एक झुण्ड तैयार कर लिया। गाँव के स्वच्छन्द वातावरण में बड़े होने के चलते उसके जैसा अनुभव और किसी बच्चे का नहीं था। वह देखते-देखते अपने झुण्ड का लीडर बन गया। लीडर होने का मतलब था कि क्लास में दूसरे बच्चे उसकी बात मानते थे। अगर दो बच्चों में लड़ाई हो तो फैसला कक्कु करता था। लेकिन उसकी लीडरी में सबसे बड़ी बात यह थी कि जब किसी बच्चे के घर से कोई मिठाई आती थी तो उसमें एक हिस्सा कक्कु का होता था। इस हिस्से को वह बड़ी शान से अपने दोस्तों को बाँटता था।

क्लास में एक नया लड़का आया।

नाम था सागर। सागर के माँ-बाप जाते वक्त ढेर सारे चॉकलेट रखकर गए। सागर ने उन्हें बक्से में छुपाकर रखा था। बक्से पर ताला लगाना वह कभी नहीं भूलता था। कक्कु ने उसे छुप-छुप कर चॉकलेट खाते देख लिया। उसने फौरन ऑर्डर दिया,"तुम चुपके-चुपके चॉकलेट खाते हो। यह नहीं चलेगा। मुझे भी देनी पड़ेगी।"

"चॉकलेट तो खत्म हो गई।"

"बक्सा खोल कर दिखाओ।"

सागर ने बक्सा खोलने से इन्कार कर दिया। कक्कु के प्रभुत्व को यह सीधी चुनौती थी। मार-पीट थोड़ा मुश्किल का काम था क्योंकि क्लास-टीचर सागर के रिश्तेदार थे। वैसे भी सागर जब भें-भें करके रोता था तो पूरे स्कूल में उसकी आवाज़ फैल जाती थी। लेकिन उसकी सज़ा का कोई उपाय तो करना ही था।

हॉस्टल में बड़े-बड़े कमरे बने थे। रात में एक कमरे में पन्द्रह बच्चे और एक शिक्षक सोया करते थे। सब बच्चों का अलग-अलग बिस्तर था। बच्चे अपने-अपने सामान बिस्तर के नीचे बक्से में रखते थे।

उस रात सब लोग सो चुके थे। कमरे में ज़ीरो पावर के बल्ब से एक भुतही रोशनी फैली हुई थी। बाहर मेंढक टर्र-टर्र की आवाज़ निकाल रहे थे। अचानक सागर की भर्राई हुई आवाज़ आई, "भूत-भूत, बचाओ-बचाओ।" दूसरे बच्चे भी भूत-भूत चिल्लाने लगे। कई बच्चे भूत के डर से इतना डरे कि वे हिल-डुल भी नहीं रहे थे। मास्टर जी ने लाइट जलाई तो बच्चों की जान में जान आई। लेकिन सागर था कि अभी भी बचाओ-बचाओ चिल्ला रहा था। मास्टर जी ने झल्लाकर उसकी मच्छरदानी उठाई तो एक बड़ा-सा मेंढक बिस्तरे से कूदा।

किसी ने सागर के पजामे में मेंढक रख दिया था। अन्धकार में उसकी हर छलाँग भूत के हमले जैसी लगती थी। अब सागर की जान में जान आई और वह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा। आखिर यह किसकी हरकत होगी? कमरे के सारे बच्चे सहमे-सहमे से खड़े हुए सागर को देख रहे थे। सिर्फ एक बच्चा गहरी नींद सो रहा था - कक्कु। मास्टर जी ने दो-एक बार सब बच्चों को देखा उसके बाद वे सीधे कक्कु के बिस्तरे की ओर गए। कक्कु को बिस्तरे से खींच कर उन्होंने ऐसी पिटाई की कि कक्कु भी कई दिनों तक कराहता रहा।

(9)

कक्कु गया डोसे की दुकान पर

कक्कु और उसके साथी हॉस्टल के बँधे हुए जीवन से परेशान रहते थे। वे हॉस्टल से निकलने का कोई-न-कोई उपाय ढूँढ़ निकालते थे। शहर के बाज़ारों की चहल-पहल, चमकीले कपड़ों की दुकानें, तरह-तरह की मिठाइयाँ और व्यंजन बेचने वाले होटल बच्चों को खूब भाते थे। लेकिन पैसों की तंगी तो होती ही थी। ज़्यादातर समय बाज़ार देखने में ही गुज़रता था। कभी-कभी किसी होटल में कोई ज़ायकेदार चीज़ खा ली जाती थी। कक्कु को डोसे बहुत पसन्द थे। लेकिन डोसे जेब पर भारी पड़ते थे।

कक्कु ने डोसे के होटल के बारे में एक खास बात देख रखी थी। उसमें सामने एक काउंटर था जहाँ होटल का मालिक बैठा करता था। उसके बाद पन्द्रह-बीस कुर्सी-टेबल लगी थीं। इनके बाद एक और कमरा था जहाँ हाथ धोने का बेसिन था। उसी में एक तरफ कारीगर नाना व्यंजन बनाते रहते थे। उसके बाद एक और दरवाज़ा था जो पास की गली में खुलता था। कक्कु ने सोचा कि अगर डोसा खाकर पिछले दरवाज़े से निकल भागा जाए तो फ्री का डोसा हो जाएगा। उस दिन कक्कु और सागर बाज़ार आए थे। कक्कु को अपनी तरकीब आज़माने का मौका मिला। सागर को सारी योजना समझा कर दोनों लोग मज़े से होटल के अन्दर चले गए। होटल में दोनों लोगों ने खूब खुश होकर डोसा खाया। योजना के तहत पहले कक्कु पिछले दरवाज़े से बाहर निकल गया। थोड़ी दूर जाकर वह सागर का इन्तज़ार करने लगा। उधर कक्कु के बाहर निकल जाने के बाद सागर को लगा कि होटल के सारे लोग उसी की तरफ देख रहे हैं। उसके हाथ काँपने लगे, गला सूख गया।

काफी इन्तज़ार के बाद कक्कु को थोड़ी चिन्ता हुई। सागर के पास तो पैसे भी नहीं थे। चक्कर लगाकर दूर कोने से उसने होटल के काउंटर पर नज़र दौड़ाई। देखा सागर वहाँ खड़ा-खड़ा रो रहा है। अब कक्कु पशोपेश में था। दुबारा होटल में जाए तो होटल वाला उसे भी पकड़ कर रख सकता है। स्कूल में अगर शिकायत

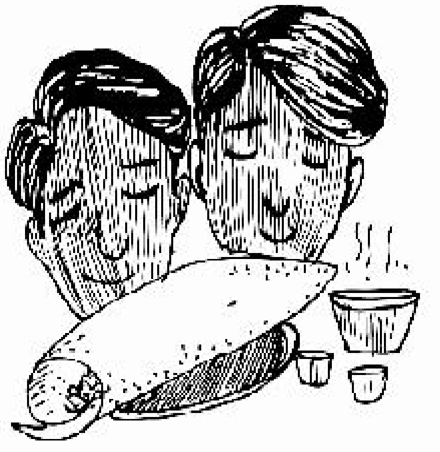

हो गई तो गए काम से। दूसरी तरफ अपने साथी को यूँ अकेला छोड़ना भी ठीक नहीं होता। बड़ी हिम्मत करके वह दुबारा होटल पँहुचा। सागर ने उसे देखा तो ज़ोर-से रोने लगा। होटल का मालिक मानो उसका ही इन्तज़ार कर रहा था। दोनों बच्चों से कान पकड़ा कर उसने पाँच-पाँच बार ऊठक-बैठक करवाई। फिर डोसे के पैसे वसूल कर उन्हें वहाँ से जाने दिया।

(10)
दादाजी का मौनव्रत

हॉस्टल में रात के खाने के बाद बच्चे अपने-अपने घरों की कहानियाँ बताते थे। एक दिन कक्कु ने अपने दादाजी के बारे में यह कथा बताई-

मेरे दादाजी बड़े मेधावी छात्र थे। हमारे कुनबे में वे पहले पढ़े-लिखे व्यक्ति थे। गाँव की पाठशाला में छठी क्लास तक ही पढ़ाई होती थी। आगे की पढ़ाई के लिए उन्हें शहर भेजा गया। शहर था काफी दूर। वहाँ से तीन घण्टे ट्रेन के सफर के बाद हमारे गाँव का स्टेशन आता था। वहाँ से घण्टे भर बैलगाड़ी में सफर करने पर हमारा गाँव आता था। दादाजी धीरे-धीरे दसवीं क्लास में पहुँच गए। उन दिनों गाँधीजी ने अँग्रेज़ों के खिलाफ मुहिम छेड़ रखी थी। लोग अपने-अपने ढंग से गाँधीजी के आन्दोलन में हिस्सा ले रहे थे। ज़माना अँग्रेज़ों का था। इसलिए ये काम कई बार काफी जोखिम-भरा होता था। अगर अँग्रेज़ पकड़ लें तो पता नहीं कहाँ किस बात की सज़ा मिल जाए।

दादाजी को भी गाँधीगीरी करने का मन हुआ। क्या करें, यह सोचते-सोचते उन्होंने गाँधीजी की तरह मौनव्रत रखने की ठानी। मतलब यह कि हफ्ते में एक दिन वे किसी से बातचीत नहीं करते थे। बहुत ज़रूरत हो तो वे लिखकर जबाब देते थे। दादाजी ने ज़ोर-शोर से मौनव्रत का पालन शुरू कर दिया। एक दिन घर से टेलीग्राम आया कि उनकी माँ काफी बीमार हैं। अगली सुबह दादाजी ट्रेन पकड़ कर गाँव पहुँच गए। दुर्भाग्य से वह दिन उनके मौनव्रत का दिन था।

घर पहुँचकर वे सीधा माँ के पास गए। माँ ने कराहते हुए पूछा, “बेटे कैसे हो? टेलीग्राम कब मिला?”

दादा जी ने पहले सवाल का जबाब तो इशारे से दे दिया लेकिन दूसरे सवाल का जबाब कैसे दें, यही सोच

रहे थे। तभी माँ का सवाल आया, "क्यों बेटा, कुछ बोल क्यों नहीं रहे हो?"

अब गाँधीजी, आन्दोलन और मौनव्रत की बात सांकेतिक भाषा में अपनढ़ लोगों को कैसे समझायी जाए। कोई पढ़ा-लिखा होता तो लिखकर बता देते। वहाँ यह भी सम्भव नहीं था। दादाजी मौनव्रत बचाए रखने पर दृढ़ थे। वे तरह-तरह से हाथ-पाँव और सिर हिलाकर गाँधीजी और मौनव्रत के बारे में लोगों को समझाने लगे। लेकिन उनकी कोई बात घरवालों के पल्ले नहीं पड़ी। वे घबराकर तरह-तरह के सवाल पूछने लगे। उन सवालों के जवाब में दादाजी अजीबो-गरीब हरकतें करते। सवाल जितने पेचीदा होते जाते उनकी हरकतें उतनी ही उछल-कूद भरी होंती। भरतनाट्यम् और कत्थक की शायद ही कोई मुद्रा थी जो दादाजी ने नहीं कर दिखाई। लेकिन घर वालों का तो नृत्य से कोई वास्ता ही नहीं था। उन्हें तो लगा कि मीरा टोला की डायन ने उनके बच्चे की आवाज़ छीन ली है। जब माँ फूट-फूटकर रोने लगीं और बड़े लोग ओझा-गुणी बुलाने की बात करने लगे तब घबराकर दादाजी ने अपना मौनव्रत भंग किया। दादाजी का व्रत तो टूट गया लेकिन घर वालों ने राहत की साँस ली।

पी.के. बसन्तः दिल्ली के जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय में इतिहास पढ़ाते हैं।
सभी चित्र व सज्जाः कनक शशिः भोपाल में रहती हैं और स्वतंत्र कलाकार के रूप में पिछले एक दशक से बच्चों की किताबों के लिए चित्रांकन कर रही हैं।